Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233
Continuous issue-22 |January – March 2016

साम्प्रदायिक कथाओं में पारस्परिक आदान-प्रदान

(तुलनात्मक अध्ययन के लिये अपेक्षित सामग्री के संदर्भ में)

प्रस्तावना

दो या दो से अधिक भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये पूर्व तैयारी के रूप में उन उन भाषाओं के विभिन्न साहित्य का परिज्ञान अपेक्षित होता है। पर, इसके साथ साथ उन उन भाषाओं के देश-प्रदेशों की सांस्कृतिक परंपरा एवं विरासत का परिज्ञान होना भी अतीव आवश्यक है। बिना सांस्कृतिक परम्परा तथा विरासत के जाने मात्र भाषापाण्डित्य के आश्रय से किसी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा उनके पारस्परिक आदान-प्रदान का पता लगाना संभव नहीं है। इतना ही नहीं, साहित्य के क्षेत्र में जिसे अति-उच्चतम-साहित्यिक समीक्षा (हायर क्रिटिसिझम) के रूप में जाना जाता है, उसे भी साकार रूप देना संभव नहीं है।

यह तथ्य अनुभूत तथा मान्य है कि कोई कवि कुछ भी लिखता विचारता है, उसे के पीछे कोई न कोई प्रेरकतत्व होता ही है। इन प्रेरकतत्त्वों में प्रमुखतः वस्तु, नेता तथा रस होते हैं। इन प्रेरकतत्त्वों से प्रेरणा ले कर जब कोई कवि अपने काव्य की सृष्टि करने के लिये उद्यत बनता है, तब उसे विविध सांस्कृतिक तथ्यों के प्रयोग का भी अवसर मिलता है। जो जितने ज्यादा सांस्कृतिक तथ्यों से परिचित होता है, वह उन का उतनी ही अधिकता से प्रयोग करता है। पर, बिना सांस्कृतिक तथ्यों के प्रयोग किये काव्य को व्यापक प्रसिद्धि दिला पाना संभव नहीं बनता। जो कवि मात्र भाषिक व्यवस्थाओं के आधार पर काव्य रचना करता है, वह मनोरंजनात्मक काव्यों के कारण क्षणिक प्रसिद्धि भले प्राप्त कर ले, पर चिरंजीवी प्रसिद्धि के लिये सांस्कृतिक तथ्यों के प्रयोग के बिना काम चलता नहीं है।

इतनी प्रस्तावना के बात, तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन के लिये एक और महत्त्वपूर्ण हकीकत को भी ध्यान में लेना आवश्यक है। विश्व की सभी भाषाओं को हमें दो भाग में विभाजित करके देखना होगा। तद्यथा - 1. एक प्रकार के वे भाषायें जिन का प्रचलन काल काफी लम्बा है तथा उस लम्बे काल में विविध संस्कृतियों ने तथा सम्प्रदायों ने भाषा तथा साहित्य पर अपना प्रभाव छोडा है। 2. दूसरी वे भाषायें हैं, जिनके प्रचलन का काल बहुत लम्बा नहीं है तथा उस अल्प समयावधि में किसी एक संस्कृति या सम्प्रदाय ने ही उस भाषा तथा साहित्य पर अपना प्रभाव बनाय रखा है।

जब तक आप इन तथ्यों को दृष्टिसमक्ष नहीं रखेंगे, आपका तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन का कार्य व्यापक रूप न ले सकेगा।

आज हम संस्कृत साहित्य को ले कर इन उपर्युक्त विचारों को आधार बना कर थोडा प्रयोगात्मक विमर्श करने का उपक्रम कर रहे हैं। [1]

1. जैन कवि श्रीभावदेवसूरि ने विक्रम संवत 1412 में श्रीपार्श्वनाथचरितम् नाम से प्रसिद्धि एक संस्कृत महाकाव्य रचा है। इस में कुल मिला कर आठ सर्ग हैं। श्रीपार्श्वनाथचरितम् का आकार 6400 श्लोकप्रमाण है। इस महाकाव्य के नायक जैनों के तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ है। इनके पूर्ववर्ती दश भवों का चरित इस काव्य की प्रधान विषय वस्तु है।

श्रीपार्श्वनाथचरितम् के प्रथम सर्ग में पार्श्वनाथ के प्रथम भव की कथा के प्रसंग में एक लघ्वी कथा आती है। इसे व्याधकथा नाम प्रदान किया गया है। इस कथा के शब्द इस प्रकार से हैं -

किञ्चैवं दुर्मतिं यच्छन् व्याधादप्यधिको ऽभवः। अतिनिन्द्यो ऽहि पापस्य कारकादुपदेशकः ।। 167 ।।

इस प्रकार से दुर्मति देने वाला व्याध से भी ज्यादा (हिंसक) होता है। क्योंकि पाप को करने वाले की अपेक्षा पाप का उपदेश करने वाला ज्यादा निन्द्य हो जाता है।

यथा को ऽपि वने व्याधः कर्णान्ताकृष्टकार्मुकः। घाताग्रगतया मृग्या सदैन्यमिदमर्थितः ।। 168 ।।

जैसे कि किसी एक वन में कान तक खिंचा लिया है धनुष्य जिसने ऐसे एक व्याध को घात के लिये आगे चली जा रही मृगी ने दीनभाव से ऐसी प्रार्थना की -

प्रतीक्षस्व क्षणं व्याध ! बाध्यमानानि मे क्षुधा। अवतिष्ठन्तेपत्यानि मदीयागमनाशया ।। 169 ।।

हे व्याध तुम थोडी देर प्रतीक्षा करो. क्योंकि क्षुधा से बाधित हुए मेरे सन्तान मेरे आगमन की आशा से बैठे हुए हैं।

स्तन्यपानमहं तानि कारयित्वा तवान्तिकम्। यावदायामि तेनोचे नैषि चेत्तव किं ततः ।। 170 ।।

मैं उन्हें स्तनपान करवा कर तुम्हारे पास आ जाऊँगी। (इस पर) व्याध बोला - यदि नहीं आई तो तुम्हारा मैं क्या करुंगा ?

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वाङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः तत्संसर्गश्च पञ्चमः ।। 171 ।।

(इस के उत्तर में मृगी ने कहा -) ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, गुर्वाङ्गना के साथ समागम, तथा ऐसे कार्य करने वाले के साथ संसर्ग रखना - ये पांच महापातक बताये गये हैं। (यदि मैं नहीं आती हूँ तो मुझे ये पातक लगें।)

ब्रह्महत्यादिपञ्चातिपातकाङ्गीकृतवापि। यदा न प्रत्ययः तस्य तदा ऽभाणि पुनस्तया ।। 172 ।।

(इस प्रकार मृगी के द्वारा) ब्रह्महत्य वगेरह पांच पातकों के स्वीकार करने पर भी जब व्याध को उस पर कोई विश्वास नहीं बैठा, तब फिर मृगी बोली -

कुधियं पृच्छतो दत्ते विश्वस्तस्य च दुर्मतिम्। तस्य पापेन गृह्ये ऽहं यदि नायामि सत्वरम् ।। 173 ।।

दुष्ट बुद्धि मानव को कोई विश्वस्त हो कर किसी बात को पूछे, और वह दुष्ट बुद्धि मानव उस प्रश्न के उत्तर में गलत मार्गदर्शन करें, गलत बात बतायें, और उसे जो पाप लगता है, वही पाप मैं तुरन्त न आऊँ तो मुझे लगे।

तेन मुक्ता तथा कृत्वा पुनरागत्य तत्र सा। पप्रच्छ वद भो व्याध ! तव बाणप्रहारतः ।। 174 ।।

---

[1]. आज वीरशासनम् , संस्था के द्वारा संस्कृत-जैन-काव्य-माला के रूप में जिन 27 काव्यों का प्रकाशन कर लोकार्पण किया गया है, उस को आधार बना कर यहाँ विमर्श करना अभिप्रेत रखा है।

इस प्रतिज्ञा के कारण से व्याध ने मृगी को छोड दिया । (मृगी अपने निवास स्थान पर जा कर, अपने सन्तानों को स्तनपान करवा कर) वापस आ गई । (वापस आ कर मृगी ने व्याध से पूछा कि -) हे व्याध ! तेरे बाणों के प्रहार से मैं -

कथं छुट्ये ततस्तेन चिन्तितं हन्त सर्वथा । पशूनामपि निर्भत्स्यां कथं यच्छामि दुर्मतिम् ।। 175 ।।

कैसे छुट सकती हूँ । इस पर उस व्याध ने सोचा पशु के लिये भी जो पातक है, तथा भत्स्यं है, वह दुर्मति दान मैं कैसे कर सकता हूँ । (अर्थात् मुझे इस प्रश्न के उत्तर में कोई गलत बात नहीं कहनी है, पर जो धर्म तथा न्याय सम्मत हो, वही बात मुझे कहनी चाहिये । ऐसा सोच कर वह बोला -)

कथितं चेति भद्रे ! मां दक्षिणेन प्रयासि चेत् । तथैव वचसा तस्य सा जगाम जिजीव च ।। 176 ।।

हे भद्रे ! यदि तुम मेरे दक्षिण में से हो कर निकल जाती हो तो मेरे बाणों के प्रहार से छूट सकती हो । व्याध के इन वचनों के अनुसार मृगी उसके दक्षिण से हो कर निकल गई और इस प्रकार से वह जीती रही ।

विमर्श - इस लघु कथा को पढते ही किसी भी समीक्षक के मन में (अन्य प्रश्नों के साथ साथ) कम से कम निम्नानुसार तीन प्रश्न अवश्य उठेंगे -

1. व्याध तथा हिरणी के पात्र इस कथा में कहाँ से आयें ?
2. पांच महापातकों का निर्धारण किसने किया है ?
3. हिरणी व्याध के दक्षिण बाजू से निकल जाने पर कैसे बच गई ?

इन प्रश्नों के उत्तर अन्य किसी भाषा-साहित्य में खोजने पर नहीं प्राप्त होगें, अपितु संस्कृतभाषा के विशाल कालखण्ड के साहित्य का स्वाध्याय करने पर ही प्राप्त हो सकेगें । तद्यथा -

1. इस कथा में व्याध तथा हिरणी के पात्रों की प्रेरणा संस्कृत के साहित्य से ली गई लगती है । महाशिवरात्रि के पर्व का महत्त्व बताने के लिये व्याध तथा हिरण की एक सुप्रसिद्ध कथा परम्परा में प्रचलित है । यह कथा इसी रूप से यद्यपि किसी पुराण में वर्णित उपलब्ध नहीं है । पर, इस परम्परा प्रसिद्ध कथा में जिन पात्रों की परिकल्पना है, उसमें से यहाँ पात्रों की प्रेरणा ली गई है ।

2. कथा के घटना क्रम में जिन पांच पातकों का निर्देश किया गया है, वे पातक मनुस्मृति के सन्दर्भ से हैं ।[2] बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में मनुस्मृति प्रचलित रही हैं । इस की व्यापक प्रसिद्धि की छाया भी इस कथ्य में देखी जा सकती है । समीक्षक के रूप में हमारे मन में प्रश्न हो सकता है कि जैन कवि के द्वारा विरचित इस काव्य में जैन संप्रदाय की मान्यताओं को ध्यान में रखा जाना स्वाभाविक है । इस दृष्टि से देखा जावें, तो जैन मान्यताओं के अनुरूप चार महापातकों का समावेश तो ठीक लगता हैं । अर्थात् इन चार पातकों को जैन सम्प्रदाय की मान्यता के अनुरूप देखा जा सकता है । पर इन चार पातकों में जो सब से पहले है, उस ब्रह्महत्या पातक का क्या ?

हिन्दु या ब्राह्मण परम्परा में ब्रह्म अर्थात् विप्र या वैदिक की हत्या को महापातक माना जाता रहा है । इस परम्परा में ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मण का स्थान माननीय तथा श्रद्धेय रहा है ।[3] पर, अवैदिक जैनसमाज में स्वीकृत सामाजिक व्यवस्था में लिये ब्रह्म

---

[2] देखें – वशिष्टस्मृति 1 , 9 – 20 , मनुस्मृति 11 , 55 तथा 180 , याज्ञवलक्य स्मृति 3 , 227 तथा 261 विष्णुस्मृति 35 , 1-5 , वृद्धहारित स्मृति 9 , 174 में भी थोडे से परिवर्तन के साथ इन पांच पातकों का निर्देश है ।

[3] तैत्तिरीयसंहिता (2 , 5 , 1 , 2 तथा 5 , 3, 12 , 1 -2) , शतपथब्राह्मण (13, 3 , 1 ,1) इत्यादि में ब्रह्महत्या को सर्व से बडा पाप माना गया है ।

का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। ऐसी स्थिति में इस ब्रह्महत्यारूप पातक का जैनकाव्य में क्या कोई स्थान हो सकता है ? इतना ही नहीं जैन परम्परा तो ब्रह्महत्या ही क्यों, जीवमात्र की हत्या को पातक स्वीकारता हैं। फिर वे मात्र ब्रह्महत्या को ही महापातक की कोटि में रख कर अपने अहिंसा धर्म की सीमा को क्यों सीमित करना चाहेगें ?

इस प्रकार के प्रश्न की संभावना होने पर भी यहाँ ब्रह्महत्या को महापातकों में स्थान दे कर स्वीकृति प्रदान कर दी गई है। इसकी पृष्ठभूमि में सांप्रदायिक सद्भावना काम कर रही है, यह कहना कथमपि असत्य नहीं है। संस्कृत जैसी लम्बे समय से प्रचलित भाषा पर विभिन्न सांप्रदायिक तथा सांस्कृतिक प्रभावों की छाया पडना स्वाभाविक है। यह छाया आगे चल कर समग्र भारतीय समाज में व्यापक रूप से प्रसृत होती रही। इस का प्रभाव हमें मध्यकालीन तथा अर्वाचीन संस्कृतकाव्यों में दिखाई देती है। यहाँ सांप्रदायिक मान्यताएँ व सिद्धान्त ऐकान्तिकवाद के रूप में न उभर कर आदान-प्रदान के रूप में उभर आये हैं। अपने कविधर्म में किसी कवि ने इसे मानने से तथा उसके पालन करने से कभी परहेज नहीं रखा। यदि परहेज रखा होता, तो संदर्भित काव्य में स्थित इस कथा में उपर्युक्त श्लोक को स्थान प्रदान करना कभी भी संभव नहीं होता। संस्कृत काव्यों में सांप्रदायिक मतों के परस्पर आदान प्रदान का इससे उत्तम और कौन सा उदाहरण हो सकता है ?

आप चाहें, तो इसे काव्यचौर्य घोषित करके अपना पिण्ड छुडा सकते हैं, परन्तु तटस्थ हो कर विचारने पर यही अनुभव होगा कि महापातकों के परिगणन का यह उपक्रम सांप्रदायिक आदान-प्रदान की उदारता को उजागर करता है।

इतना ही नहीं, प्राचीन काल से प्रचलित इन महापातक के ख्याल में परिष्कार कर अपना योगदान सुनिश्चित करवाने का कवि का उपक्रम भी यहाँ प्रशस्य है। प्रचलित महापातकों से भी उपर एक ओर महापातक को प्रतिष्ठापित करने का कार्य कवि की अपनी परिकल्पना है, जिसे भावक के रूप में हमें स्वीकार करना होगा। इस प्रकार से देखें तो प्रस्तुत काव्य में मात्र अनुकरण ही नहीं है, अनुकरण के साथ साथ उस विचार को आगे बढाने का उपक्रम भी है। यहाँ पर गिनाये गये पांच महापातकों के उपर एक ओर (छट्ठे) महामहापातक को प्रतिष्ठापित करने की परिकल्पना कवि का स्वकीय योगदान है।

3. कथा का सुखद उपसंहार करते हुए कवि ने व्याध के वचन के अनुसार मृगी को उस व्याध के दक्षिण से निकाल कर बचा लिया, इस संकल्पना का क्या मतलब है ? आखिर दक्षिणतः जाने पर व्याध का बाण उपर क्यों नहीं गिरा ? ये प्रश्न प्रत्येक पाठक को मन में होते रहेंगे, जब तक इसका वास्तविक समाधान न होगा। कई लोग तो नियतिकृतनियमरहिताम् या अनन्यपरतन्त्राम् के रूप में काव्य रचना होती है, ऐसा सोच कर मौन का आश्रयण कर लेंगे। क्यों किसी झंझट में अपनो को डालेंगे। पर समीक्षक को तो चूप रहना नहीं है, यदि वह भी चूप हो गया, तो उसका समीक्षत्व खतरे में पडेगा ! ऐसी स्थिति में जब तक हमें संस्कृत भाषा के प्रयोग प्रदेश की सुदीर्ध-कालीन सांस्कृतिक परम्परा की तथा साम्प्रदायिक नीतिनियमों की जान कारी न कर लेगें, तब तक इसका वास्तविक कारण जान नहीं पायेगें।

यहाँ पर कवि के द्वारा संकल्पित दक्षिणतः निर्गमन कर अपने आपको सुरक्षित कर लेने की सलाह के पीछे एक सांस्कृति परम्परा का प्रभाव है। प्राचीन भारतीय समाज में यह परम्परा रही है कि हम जिसे अपना माननीय , सत्करणीय तथा पूज्य मानते हैं, उसे अपने दक्षिण में स्थान देते हैं। श्रौतसूत्रों की याज्ञिक परम्परा में एक व्यवस्था है - दक्षिणतः पत्नी। अर्थात् यज्ञादि कार्य में पत्नी को दक्षिण बाजू स्थान दिया जाता है। इस कारण की इस संस्कृति में पुरुष यजमान अपनी पत्नी को माननीय, सत्करणीय तथा पूज्य स्वीकारता है।

इसी प्रकार से विवाहसंस्कार में वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। इस प्रदक्षिणा में अग्नि देवता को वर-वधू अपने दक्षिण में रख कर परिक्रमा करते हैं। इस परिक्रमा के अवसर पर अग्नि के दक्षिण में रखना उसे माननीय, सत्करणीय तथा पूज्य स्वीकारने का प्रतीक बनता है। देवस्थानों में पूजन-दर्शन के पश्चात् की जाने वाली प्रदक्षिणा में भी इसी तरह होती है।

इस सांस्कृतिक परम्परा के ज्ञात होते ही व्याध के द्वारा दिये गये उपदेश का वास्तविक रहस्य पाठक के सामने आ जाता है। इस तथ्य तथा सत्य से अनवगत समीक्षक इस की समीक्षा करने के लिये प्रवृत्त होगा, तो विनायक के स्थान पर वानर के निर्माण का अवसर बन जायेगा।

संक्षेपतः इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि तुलनात्मक रूप से किसी साहित्य के अध्ययन अथवा संशोधन के कार्य में भाषाभेद को ही ध्यान में लेना आवश्यक नहीं है, परन्तु लम्बे समय से प्रचलन में रहने वाली भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन-संशोधन में सांस्कृतिक तथा सांप्रदायिक परम्पराओं को भी ध्यान में लेना आवश्यक बन जाता है। इति दिक् ॥

देवाश्च ह वा असुराश्चास्पर्धन्त ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमं नस्तावद्यज्ञं गोपाय यावदसुरैः संयतामहा इति स वै नस्तेन रूपेण गोपाय येन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयसि येन शक्ष्यसि गोसुमिति स ऋग्वेदो भूत्वा पुरस्तात् परीत्योपातिष्ठन्तं देवा अब्रुवन्नन्यत् तद्रूपं कुरुष्व नैतेन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयसि नैतेन शक्ष्यसि गोसुमिति स यजुर्वेदो भूत्वा पश्चात् परीत्योपातिष्ठत् तं देवा अब्रुवन्नन्यत् तद्रूपं कुरुष्व नैतेन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयसि नैतेन शक्ष्यसि गोसुमिति स सामवेदो भूत्वा उत्तरतः परीत्योपातिष्ठत् तं देवा अब्रुवन्नन्यदेव तद्रूपं कुरुष्व नैतेन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयसि नैतेन शक्ष्यसि गोसुमिति स इन्द्र उष्णीषी ब्रह्मवेदो भूत्वा दक्षिणतः परीत्योपातिष्ठत् तं देवा अब्रुवन्नेतत् तद्रूपं कुरुष्वैतेन नो रूपेण भूयिष्ठं छादयस्येतेन शक्ष्यसि गोसुमिति तद्यदिन्द्र उष्णीषी ब्रह्मवेदो भूत्वा दक्षिणतः परीत्योपातिष्ठत् तद्ब्रह्माभवत् तद्ब्रह्मणो ब्रह्मत्वं तद्वा एतदथर्वणो रूपं यदुष्णीषी ब्रह्मा तं दक्षिणतो विश्वेदेवा उपासीरंस्तं यद्दक्षिणतो विश्वेदेवा उपासीरंस्तत् सदस्योऽभवत् तत् सदस्यस्य सदस्यत्वं बलेर्ह वा एतद्बलमुपजायते यत् सदस्य आमयतो वै व्रजस्य बहुलतरं व्रजं विन्वन्ति घोरा वा एषा दिग्दक्षिणा शान्ता इतरास्तद्यानि स्तुतानि ब्रह्मानुमन्त्रयते मनसैव तानि
सदस्यो जनदित्येतां व्याहृतिं जपं चेत्यात्मानं जनयति न जित्यात्मानमपित्वे दधाति तं देवा अब्रुवन् वरं वृणीष्वेति वृणा ३ इति स वरमवृणीतास्यामेव मां होत्रायामिन्द्रभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तः तिष्ठेयुरिति तं तस्यामेव होत्रायामिन्द्रभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तोऽतिष्ठंस्तं यत् तस्यामेव होत्रायामिन्द्रभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तस्तिष्ठंस्तद्ब्राह्मणाच्छंस्यभवत् तद्ब्राह्मणाच्छंसिनी ब्राह्मणाच्छंसित्वं सैषैन्द्री होत्रा यद्ब्राह्मणाच्छंसीया द्वितीयं वरं वृणीष्वेति वृणा ३ इति स वरमवृणीतास्यामेव मां होत्रायां वायुभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तस्तिष्ठेयुरिति तं तस्यामेव होत्रायां वायुभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तोऽतिष्ठंस्तं यत् तस्यामेव होत्रायां वायुभूतं पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तस्तिष्ठंस्तत् पोताभवत् तत् पोतुः पोतृत्वं सैषा वायव्या होत्रा यत् पोत्रिया तृतीयं वरं वृणीष्वेति वृणा ३ इति स वरमवृणीतास्यामेव मां होत्रायामग्निभूतमिन्धानाः पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तस्तिष्ठेयुरिति तं तस्यामेव होत्रायामग्निभूतमिन्धानाः पुनन्तस्तुवन्तः शंसन्तोऽतिष्ठंस्तं यत् तस्यामेव होत्रायामग्निभूतमिन्धानाः पुनन्तस्तुवन्तः
शंसन्तस्तिष्ठंस्तदाग्नीध्रोऽभवत् तदाग्नीध्रस्याग्नीध्रत्वं सैषाग्नेयी होत्रा यदाग्नीध्रीयेति ब्राह्मणम् ॥ १,२.१९ ॥गोपथब्रह्मणम् ॥

****

प्रो. कमलेशकुमार छ. चोकसी

संस्कृतविभाग, भाषासाहित्यभवन,

गुजरात युनिवर्सिटी, अमदावाद - 380009

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat